पं० रामशरण शास्त्री कृत कौमुदीकथाकल्लोलिनी में व्याकरण प्रयोग

प्रो० (डॉ०) अशोक कुमार*
श्याम सुन्दर पाठक**

पं० रामशरण शास्त्री कृत कौमुदी कथाकल्लोलिनी संस्कृत की प्राचीन लोककथा की पद्धति में रची गई गद्य रचना है जिसमें वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी के सभी प्रमुख सूत्रों के उदाहरणों को कथा क्रम में समाविष्ट किया गया है। इसकी मूलकथा कथासरित्सागर की ही है जिसमें वत्सनरेश उदयन के पुत्र नरवाहन दत्त तथा उसके विवाह की रोमांचक कथा बहुत सरस प्रणाली से अलंकारों का प्रयोग करते हुए कही गई है। स्वयं लेखक का कथन है कि सरल और रोचक कथानक को सिद्धान्तकौमुदी के संधि प्रकरण से लेकर उत्तर कृदन्त तक के (उणादिप्रकरण को छोड़कर) प्रायः सभी आवश्यक सूत्रों के उदाहरणों से सम्बद्ध किया गया है।

कौमुदीकथाकल्लोलिनी को ग्यारह कल्लोलों में विभक्त किया गया है। वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार ही यह कथा–ग्रंथ पूर्वार्ध और पश्चार्ध में विभक्त है। पूर्वार्ध में पाँच कल्लोल हैं जिनके शीर्षक भी सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार ही दिए गए हैं जैसे–प्रथम कल्लोल (संधि निर्देश), द्वितीय कल्लोल (संधि निर्देश), द्वितीय कल्लोल (कारक निर्देश), तृतीय कल्लोल (समास तथा स्त्री प्रत्यय निर्देश), चतुर्थ कल्लोल (समास तथा तद्धित निर्देश), पंचम कल्लोल तद्धित तथा द्विरूक्त निर्देश)।

कौमुदीकथाकल्लोलिनी का पश्चार्ध भाग छः कल्लोलों में विभक्त है उनके शिर्षक भी साथ–साथ दिए गए हैं जैसे षष्ठ कल्लोल (गण–निर्देश–भ्वादि प्रभृति), सप्तमकल्लोल ण्यन्त आदि प्रक्रिया निर्देश), अष्टम कल्लोल (कण्डवादि निर्देश), नवम कल्लोल (पद वाच्य लकारार्थ निर्देश) दशम कल्लोल (प्रकीर्णक निर्देश) एकादश कल्लोल (कृदन्तनिर्देश) इस प्रकार व्याकरण के उदाहरणों को समन्वित करते हुए कथाकार पं रामशरण शास्त्री ने कथासरित्सागर की कथाओं को इस कथाकाव्य में संघटित किया है। जहाँ–तहाँ उपकथाओं के शीर्षक भी

*प्रमुख, मानविकी संकाय पटना विश्वविद्यालय, पटना
**शोधार्थी स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग पटना विश्वविद्यालय, पटना

इनमें विन्यस्त किए गए हैं। जैसे वररुचि वृत्तान्त, गुणाढ्यवृत्तान्त, उदयन कथा, वासवदत्ता से विवाह, नरवाहनदत्त का जन्म इत्यादि। व्याकरण और साहित्य दोनों का अद्भुत समन्वय लेखक ने कौमुदीकथाकल्लोलिनी में किया है।

संधि प्रकरण और प्रथम कल्लोल :

प्रथम कल्लोल में वररूचि का वृत्तान्त वर्णित है जैसा कि इसके शीर्षक से स्पष्ट है यद्यपि इसमें व्याकरण के अन्य प्रकरणों के प्रयोग भी है, किन्तु लेखक का आग्रह यहाँ संधि–प्रकरण के कुछ नियमों को समझाने में लगा हुआ है। उदाहरण के लिए स्व + औन्नत्य = स्वौन्नत्य[1] (अपनी ऊँचाई) इसमें वृद्धि संधि है। (अ+औ=औ)।

इसी प्रकार सुध्युपास्यम्[2] का प्रयोग है जो सुधी+उपास्य से यण् संधि द्वारा निष्पन्न है। इसी प्रकार मध्वरि[3] का प्रयोग है जहाँ यण् संधि (मधु+अरिः= मध्वरिः) से 'उ' का 'व' हुआ है। यण् संधि का ही एक अन्य उदाहरण– धात्रंशः[4] के रूप में है जिसका विच्छेद धातृ+अंशः के रूप में है। उसी पृष्ठ पर एक प्रयोग है नह्यपूर्वम् (नहि+अपूर्वम्) यह भी यण् संधि का ही उदाहरण है।

व्यंजन संधि का एक प्रयोग है– तच्छ्रद्धया[5] इसका विच्छेद है (तत्+श्रद्धया) इसमें 'श' का 'छ' हुआ है। इसी प्रकार यत् प्रत्यय का प्रयोग है श्रव्यं इसका विच्छेद है (श्रु+युत्) यहाँ श्रु धातु के अजन्त होने के कारण यत् प्रत्यय का प्रयोग किया गया है। महर्षि कात्यायन के वार्तिक सूत्र का प्रयोग कर प्रार्णावावां शब्द बनता है। जो (प्र+ऋणावावां से अ+ऋ=आर्) वृद्धि एकादेश होकर बना है। संधि प्रकरण का प्रयोग कर लिखा है– समयानुक्रमेण[6] (समय+अनुक्रमेण) में दीर्घ संधि का प्रयोग है। इसी प्रकार त्रयोऽपि[7] का प्रयोग है जहाँ त्रयो+अपि में पदान्त एङ् है त्रयो का ओ, अत् परे में है। अपि का अ तथा पर अ के स्थान पर पूर्व के समान ओ हुआ है।

इसी प्रकार गवेन्द[8] का प्रयोग है जो गो+इन्द्र इस स्थिति में ओ का अवङ् आदेश होता है। ङ का इत्संज्ञा लोप् ग+अव+इद्र = गवेन्द्र। आद्गुणः से अ तथा इ का गुण होकर ए हुआ गवेन्द्र। पर रूप संधि का उदाहरण है– देवेहि[9] इसका विच्छेद देव+एहि (यहाँ एहि में आ+इहि संधि हुई है)

इसी प्रकार स्वप् धातु से क्त प्रत्यय करने पर स्वप्+त होता है इस स्थिति में वचिस्वपियजादीनां किति (पां.सू. 6.1.15) इस सूत्र से धातु के 'व' का सम्प्रसारण 'उ' हो जाता है। पुनः सम्प्रसारणाच्च (पा.सू.6.1.108) से पूर्व रूप होने पर स+उ+प्+त = सुप्त शब्द बनता है। इसके बाद उत्थितः शब्द के साथ आद् गुणः (पा.सू.6.1.87) होने पर सुप्तोथितः शब्द की सिद्धि होती है। इसी प्रकार तव+ ऋधि इस स्थिति में यद्यपि आद् गुणः से गुण होकर देव+ऋषि के समान तवर्धि

बनना था पर पाणिनीय सूत्र ऋत्यकः (6.1.128) प्र.ति भाव विकल्प से होने के कारण तव ऋद्धि। इसी प्रकार गच्छद्धंसः पद की सिद्धि।

गच्छत्+हंसः इस स्थिति में झयोहोऽन्यतरस्याम् (पा.सू. 8.4.62) इस पाणिनि सूत्र के द्वारा हंस के हकार के स्थान में पूर्व सवर्ध ध हो जाता है और झलांजशोऽन्ते पा०सू० के द्वारा गच्छत् के त् के स्थान में जश्त्व 'द' होने पर गच्छद्धंसः पद सिद्ध होता है।

यथेच्छं इस शब्द की सिद्धि इच्छा अनतिक्रम्य इस सामासिक विग्रह (इस लौकिक) पुनः इच्छा+अम् यथा इस अलौकिक विग्रह की स्थिति में अव्ययं विभक्ति समीप० (पा०सू० 2.1.6) के द्वारा समास तथा कृत्तद्धितसमासाश्च (पा०सू० 1.2.46) इस सूत्र के द्वारा प्रातिपादिक संज्ञा इसके बाद सुपोधातुप्रातिपदिकयोः सूत्र के द्वारा अम् विभक्ति का लोप् इच्छा+यथा इस स्थिति में प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् इस सूत्र से यथा की उपसर्जन संज्ञा और उपसर्जनं पूर्वम् इस सूत्र से उपसर्जन संज्ञक यथा का पूर्व प्रयोग होने पर यथा+इच्छा इस स्थिति में आद् गुणः इस सूत्र से गुण होकर यथेच्छा शब्द बना। इसके बाद अव्ययी भावश्च इस पाणिनि सूत्र से यथेच्छा शब्द की नपंसुक संज्ञा पुनः अव्ययीभावश्च (पा०सू० 1.1.41) इस सूत्र से अव्यय संज्ञा हो जाती है। इसके बाद प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति लाने पर यथेच्छा 'सु' बनता है तथा सु के स्थान पर अम् ओदश होकर (यथेच्छा+अम्) यथेच्छं पद सिद्ध होता है। अहो+एषा यह शब्द अहो+एषा इस स्थिति में प्रथम अहो घटक ओ कार के स्थान पर एचोऽयवायावः (पा०सू० 6.1.78) इस सूत्र से अव् आदेश प्राप्त होता है। किन्तु ओत् (पा०सू० 1.1.15) इस सूत्र से ओकारान्त अहो शब्द की प्रगृह्य संज्ञा हो जाती है इसके बाद प्लुत् प्रगृह्याचि नित्यम् पा०सू० (6.1.109) से पूर्वरूप होने पर अष्टमेऽह्नि पद सिद्ध होता है।

इसी प्रकार व्यंजन संधि का एक प्रयोग है तच्छ्रुत्वा[10] इसका विच्छेद है (तत्+श्रुत्वा) इसमें 'श' का 'छ' हुआ है। कौमुदी कथाकलोलिनी का द्वितीय कल्लोल कारक निर्देश के रूप में है इसमें प्रधानतया कारक और विभक्ति से सम्बद्ध पाणिनीय सूत्रों के आलोक में कुछ प्रयोग लेखक द्वारा किये गये हैं। यद्यपि ये दोनों प्रकरण सामान्य रूप से संस्कृत के सभी वाक्यों में उपयुक्त होते हैं तथापि इस कथा के लेखक ने कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग इस प्रसंग में किये हैं जिनका यहाँ विवेचन किया जाता है।

(1) इत्थं व्यतीतेषु केषुचिद्वत्सरेषु :

यहाँ तथाकथित भावे सप्तमी का प्रयोग है जिसके लिए पाणिनि का सूत्र है यस्य च भावेन भाव लक्षमण् (पा०सू०) अर्थात् जिसकी क्रिया से किसी दूसरी वस्तु की क्रिया सूचित हो रही है उस वस्तु वाचक शब्द में (तथा उसके विशेषण में)

सप्तमी विभक्ति होती है। इसलिए वत्सर शब्द में तथा इसके विशेषण रूप दोनों शब्दों में सप्तमी हुई है।

(2) नगराद् बहिः निर्गत :

नगर शब्द से पंचमी विभक्ति बहिः शब्द के योग में हुई है। इसे व्याकरण में उपपद विभक्ति कहा गया है। क्योंकि यह क्रिया के कारण नहीं अपितु अन्य शब्द के कारण है।

(3) अन्तःपुरमधितिष्ठद्भि :

यहाँ अन्तःपुर शब्द से द्वितीया विभक्ति कर्मकारक के कारण हुई है। पाणिनि ने आधिशीङ्स्थासां कर्म (पा०सू०) सूत्र में यह निर्दिष्ट किया है कि अधि उपसर्ग के बाद यदि शीङ् स्था या आस् धातु का प्रयोग हो तो इन धातुओं के अधिकरण होने पर भी कर्म संज्ञा हुई है यह कारक विभक्ति है।

(4) नृपतिना विप्रो व्यापाद्यते, चित्रकारः पुष्कलेन नराः अवलोकिता :

ये तीनों प्रयोग कर्मवाच्य के है जहाँ कर्म की प्रधानता वाक्य में होती है अर्थात् कर्म कर्त्ता का अभिभूत कर देता है और कर्त्ता गौण होता जाता है। कर्त्ता के गौण होने से उसमें तृतीया विभक्ति लगती है और प्रधानभूत कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है। इसलिए यहाँ क्रमशः विप्रः, चित्रकारः, नराः ये तीनों शब्द प्रथमा विभक्ति में है।

(5) गृहमधिवस :

यहाँ गृहम् शब्द से कर्म कारक की द्वितीया विभक्ति हुई है पाणिनि का नियम है कि उप, अनु, अधि तथा आङ् इनमें से किसी उपसर्ग के बाद वस् धातु का प्रयोग हो तो क्रिया के अधिकरण की कर्म संज्ञा हो जाती है। तद्नुसार द्वितीया विभक्ति लगती है।

(6) वने चोपवसत :

यद्यपि उपर्युक्त नियम के अनुसार उपपूर्वक वस् धातु के अधिकरण की कर्म संज्ञा होती है। किन्तु अधिकरण अपने मूल रूप में ही और सप्तमी विभक्ति हुई है इसका कारण यह है कि उप+वस् धातु का अर्थ निवास करना नहीं अपितु भोजनरहित कालयापन करना है जिसे लोक भाषा में उपवास करना कहते है। इस संदर्भ में पाणिनि तो मौन है किन्तु वार्तिककार कात्यायन कहते हैं कि उप पूर्वक वस् धातु के अधिकरण की कर्म संज्ञा 'अभुक्ति' के अर्थ में वर्जित है अभुक्त्यर्थस्यन[11] (सूत्र)

निः सहायमिव जगन्मां तेन विना प्रति भाति[12]—प्रसंगवश उपपद् द्वितीया विभक्ति का निर्वचन किया जा रहा है। प्रति शब्द के योग में द्वितीया विभक्ति होती है यहाँ प्रति उपसर्ग है। प्रकरणवश प्रतियोगे द्वितीया वार्तिक सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई।[13]

प्रज्ञावन्तोऽन्तरेणापि–प्रकरणवश कर्मणि द्वितीया (2–3.2) से द्वितीया की अनुवृत्ति की जाती है तदनुसार अन्तरा तथा अन्तरेण के योग में (अन्तरा च अन्तरेण च अन्तरान्तरेणौ ताभ्यां युक्तः–अन्तरान्तरेण युक्तः तस्मिन् द्वन्द्वगर्भित–तत्पुरूष) द्वितीया विभक्ति होती है।

अहमन्तरा दिवं भूमिञ्च यहाँ अन्तरायोगे द्वितीया सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई है। सूत्र कहता है अन्तरा के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

अनु यहाँ अनु शब्द से कर्म कारक की द्वितीया विभक्ति हुई है। यहाँ कर्मप्रवचनीय संज्ञा का प्रकरण आरंभ हो रहा है। संज्ञा–कर्म प्रवचनीय है तथा संज्ञी अनु है। अतः लक्षण बताने के अर्थ में अनु कर्मप्रवचनीय होता है लक्षण का अर्थ विशेष हेतु है अतः अनुर्लक्षणे (पा०सू० 1.4.84) सूत्र से कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई।

उपैनामन्या– यहाँ हीने, कर्मप्रवचनीयाः की अनुवृत्ति है। उपोधिके च (पा०सू० 1.4.76) सूत्र से आधिक्य और हीनता अर्थ द्योतित करने पर 'उप' अव्यय की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। उप अव्यय के यहाँ दो अर्थ अपेक्षित है आधिक्य अर्थ में यस्मादिधक यस्य चेश्वर वचनम् तत्र सप्तमी (पा०सू०2.39) से सप्तमी विभक्ति होकर उपैनामन्या नार्यः प्रयोग होता है।

इसी प्रकार अन्वेनं पद है। यहाँ पाणिनि सूत्र हीने (पा०सू०1.4.86) हीन अर्थ में अनु की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है यथा–अन्वेनं मर्त्याः। अतः अन्वेनम् में द्वितीया विभक्ति हुई है।

शरेण पद है। यहाँ कर्तृकरणयोस्तृतीया (पा०सू०2.3.18) सूत्र से तृतीया विभक्ति का विधान है। सूत्र का अर्थ है अनुक्त कर्त्ता और करण में तृतीया विभक्ति होती है। अतः 'साधकतम' होने से शरेण में तृतीया विभक्ति हुई है।

इसी प्रकार वाचा पद में महर्षि पाणिनि सूत्र 'येनाङ्गविकारः (पा०सू०2. 3.20) से तृतीया विभक्ति होती है। यह तृतीया की अनुवृत्ति है सूत्र का अर्थ है जिस अंग के विकार से व्यक्ति (अंगी) विकृत दिखाई दे उस अंग में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे वाचा विकल इव।

इसी प्रकार मौनेन शब्द में इत्थंभूतलक्षणे (पा०सू०2.3.21) सूत्र से करण कारक तृतीया विभक्ति हुई है सूत्र का अर्थ है किसी विशेष विधा को प्राप्त किये हुए लक्षण (ज्ञापक) से तृतीया विभक्ति होती है जैसे मौनेन मुनिरिव। यहाँ मौन होना मुनि का विशेष विधा है।

वंशवदतां– यहाँ प्रकृति सूत्र सिद्धांत कौमुदी के कृत प्रकरण में खच् प्रत्यय विधायक है। तत्रोपपंद सप्तमीस्थम् 782 से उपपदं की अनुवृत्ति होती है। वश उपपद रहने पर वदधातु में खच् प्रत्यय होता है प्रियवशे वदः खच् (पा०सू० 3. 2.38) अतः वश उपपद यहाँ है वद् धातु से खच् प्रत्यय लगकर वशंवदतां (वश+वद+खच्) पद बनता है।

इसी प्रकार प्रविष्टाय पद है। महर्षि पाणिनि के नियमानुसार सम्प्रदान कारक चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग चतुर्थी सम्प्रदाने सूत्र से किया गया है। डे.र्यः सूत्र से प्रविष्ट+डे. इस स्थिति में ह्स्व अकारान्त अंग से परे 'ङ' के स्थान पर य आदेश होता है। इसके बाद सुपि च (सू 202) सूत्र से प्रविष्ट के 'ट' के अकार का दीर्घ हुआ और प्रविष्टाय की सिद्धि हुई।

तुम्यम्–यहाँ युष्मद् शब्द मध्यंपुरूष रूच्चर्थानां प्रीयमाणः (पा०सू० 1.4.33) से चतुर्थी विभक्ति सम्प्रदान कारक किया गया है। तुम्यं रोचमानां। (युष्मद्+ङे)

तुम्यमह्यौ ङयि (पा०सू० 7.2.95) सूत्र से तुम्य आदेश हुआ तुम्यद्+अम् = तुम्यम् (टि–अद लोप अथवा 'द' लोप होने पर पूर्वरूप होकर तुम्यं पद की सिद्धि होती है। द्वितीय कल्लोल में उदयन कथा (उत्पत्ति) वर्णित है।

दृश्वनः–यहाँ दृश् धातु में क्वनिप् प्रत्यय लगा है। 'दृशेक्वनिप्' सूत्र के द्वारा।

हिंत, स्वस्ति च युष्मभ्यं भविष्यति– यहाँ हित के योग में और स्वस्ति के प्रयोग में सम्प्रदान कारक चतुर्थी विभक्ति का विधान किया गया है इसलिए यहाँ युष्मभ्यम् लिखा है। युष्मभ्यम् में युष्मद शब्द से भ्यम् अथवा अभ्यास् आदेश होता है। भ्यास आदेश मानने पर अन्त्य वर्ण द् का लोप होकर युष्मभ्यम् की सिद्धि होती है।

प्रवेशाय– यहाँ तथाकथित चतुर्थी का प्रयोग है जिसके लिए पाणिनि सूत्र है तुमर्था भाववचनात् (पा०सू० 2.3.15) अर्थात् 'भाववचनाश्य' सूत्र से जो धञ् प्रत्यय होता है तदन्तर शब्द से चतुर्थी होती है। जैसे–तन्नगरे प्रवेशाय।

पार्श्वमुपगन्तुमना– यहाँ तुमन् प्रत्यय का विधान है। यहाँ तुमुन्ण्वुलाविति तुमुनो मकारस्य तुं काममनसोरपि इति मनसि लोपः सूत्र का प्रयोग किया गया है।

सार्थिभिस्तत्पुराय गच्छ– यहाँ चतुर्थी विभक्ति सम्प्रदान कारक का प्रयोग किया गया है क्योंकि गति में चेष्टा हो तो गत्यर्थक धातुओं के मार्ग रहित कर्म में द्वितीया और चतुर्थी दोनों विभक्तियाँ होती है।

श्रापदचौरादिम्यो भीतैकाकिनी– यहाँ पाणिनी सूत्र है भीत्रार्थानां भयहेतुः (पा०सू० 1.4.25) अर्थात् भयार्थक और रक्षणार्थक धातुओं के योग में भय के हेतु की अपादान संज्ञा हेाती है। इसलिए चोर से भय सूचक पद प्रयोग के कारण पंचमी विभक्ति अपादान कारक हुआ है।

धर्मादप्रमाद्यतो– यहाँ प्रमाद अर्थ में अपादान कारक पंचमी विभक्ति का प्रयोग हैं महर्षि कात्यायन ने अपने वार्तिक सूत्र में लिखा है–जगुप्साविराम प्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वार्तिक) सूत्र का अर्थ है– घृणा, विराम (रूकना) तथा प्रमादार्थक (असावधानी) धातुओं के कारक की अपादान संज्ञा होती है। अतः यहाँ धर्म से प्रमाद अर्थ होने के कारण पंचमी विभक्ति हुई है।

तद्वधानिवार्य– यहाँ तथाकथित (वार्णार्थक धातु) पंचमी का प्रयोग है जिसके आधार पाणिनि का सूत्र है। वारणार्थानामीप्सितः (पा०सू० 1.4.27) अर्थात् वाणार्थक धातुओं के योग में ईप्सित अर्थ अपादान होता है तद्नुसार 'अपादानम्' तथा कारक पदों की अनुवृत्ति पूर्ववत की जा रही है। अतः यहाँ अपादान कारक दिया गया है।

इसी प्रकार स्थानद् योजनानि पद में महर्षि कात्यायन के सूत्रानुसार पंचमी विभक्ति का प्रयोग किया गया है। यतश्चाध्वकाल निर्माण तत्र पंचमी (वा० 1479) सूत्र का अर्थ है जिस अवधि से (जिसको आधार मानकर) मार्ग और समय की इयत्ता (दूरी) जानी जाय उस शब्द (देशवाचक या कालवाचक) से पंचमी विभक्ति होती है। अतः यहाँ योजनानि में (योजन) दूरी का बोध हो रहा है। इसलिए यहाँ स्थानांद् में पंचमी विभक्ति हुई। यथा– स्थानाद् योजनानि वर्त्तमानं जमदग्नेराश्रमं प्रयोग हुआ है।

इसी प्रकार केन हेतुना पद है। यहाँ पाणिनी सूत्र सर्वनाम्नस्तृतीया (पा०सू० 2.3.27) से तृतीया विभक्ति हो रही है। सूत्र का अर्थ है– सर्वनाम के साथ हेतु शब्द का प्रयोग होने पर यदि वे हेतु अर्थ प्रकट करते हों तो सर्वनाम और हेतु दोनों में ही तृतीया और षष्ठी विभक्ति होती है। इसलिए कथाग्रंथ में केन हेतुना लिखा गया है।

प्रसादामुत्तरेण– इस पद में द्वितीया विभक्ति कर्मकारक का प्रयोग है। पाणिनि सूत्र एनपा द्वितीया (पा०सू० 2.3.31) के द्वारा द्वितीया विभक्ति हुई है। सूत्र का अर्थ है– एनप् प्रत्ययान्त शब्दों के साथ द्वितीया विभक्ति होती है। तथाकथित उत्तरेण के पूर्व प्रासाद में द्वितीया विभक्ति लगी है। पद का अर्थ है घर के उत्तर की ओर।

वीणावादनकलाया विशेषण नाथते स्म– यहाँ आर्शीवाद अर्थ में नाथ धातु से शेषत्व रूप से विवक्षित कर्म में षष्ठी विभक्ति हुई हैं यहाँ कर्मणि की अनुवृत्ति है तद्नुसार आशीर्वचन अर्थ में नाथ् धातु के कर्म के शेषत्व विवक्षा होने पर कर्म में षष्ठी होती है।

इसी प्रकार प्राणानां दीष्यति का प्रयोग है। यहाँ कर्मणि, षष्ठी की अनुवृत्ति है दिव् धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति लगी है। अतः प्राणानां में षष्ठी विभक्ति है।

इसी प्रकार त्वं हि नृणां श्रेष्ठो ब्राह्मणः लिखा गया है। यहाँ नृणां में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग है। पाणिनि सूत्र यतश्च निर्धारणम (पा०सू० 2.3.41) से षष्ठी या सप्तमी विभक्ति होती है। सूत्र का अर्थ है– जाति, गुण क्रिया तथा संज्ञा की विशेषता के आधार पर समुदाय से पृथक करना निर्धारण कहलाता है। अतः मनुष्यों

में ब्राह्मण को श्रेष्ठ कहा गया है। इसलिए नृणाम् पद में षष्ठी विभक्ति हुई है। यहाँ मनुष्यों के समुदाय से ब्राह्मण को पृथक कर श्रेष्ठ कहा गया है।

कौमुदीकथा कल्लोलिनी का तृतीय कल्लोल समास स्त्रीप्रत्यय निर्देशात्मक रूप में है। इसमें प्रधानतया समास और स्त्री प्रत्यय से सम्बद्ध पाणिनीय सूत्रों के आलोक में कुछ प्रयोग लेखक द्वार किये गये हैं। यहाँ समास और स्त्री प्रत्यय साथ रखने से इस कथाग्रंथ की महत्ता अधिक ही हो गई है। संस्कृत व्याकरण में समास का स्थान सभी विद्वानों ने महत्वपूर्ण माना है।

निम्नलिखित श्लोक में समासों का नाम–निर्देश–पूर्वक धान्य सम्पन्न होने की कामना की गई है–

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः।
तत्पुरूष कर्मधारय येनाऽहं स्यां बहुव्रीहिः।।

भक्त की प्रार्थना है– हे पुरूष! हम दो प्राणी हैं (द्वन्द्वः) तथा दो गाय बछड़े वाले हैं (द्विगुः) मेरे घर में (दरिद्रता के कारण) नित्य व्यय का अभाव रहता है (अव्ययी भावः)। मुझसे बहुत कार्य कराइये (तत् कर्मधारय) जिससे मैं (अहं) बहुत धान्य–सम्पन्न (बहुव्रीहिः) हो जाऊँ। इसी तरह निम्नलिखित श्लोक द्वारा समासों के विग्रह का प्रकार ज्ञात होता है।

चकारबहुलो द्वन्द्वः स चासौ कर्मधारयः।
यस्य येषां बहुव्रीहिः शेषस्तत्पुरूशो मतः।।

जिसके विग्रह में अनेक प्रकार का प्रयोग हो, वह द्वन्द्व है जिसमें च चासौ विग्रह हो वह कर्मधारय है जिसके विग्रह में यस्य या येषां आदि पदों का प्रयोग किया जाय वह बहुव्रीहि है। इनके अतिरिक्त शेष तत्पुरूष है।

समास प्रकरण के पूर्व तदुपयोगी सुबन्त पदों की सिद्धि एवं सुप्–प्रत्ययों (विभक्तियों) के अर्थ विशेष का निर्वचन कथा ग्रंथ में किया जा चुका है। तदन्तर एक से अधिक पदों के समुदायक स्वरूप का निर्वचन अभिलक्षित कर जिस प्रकार भट्टोजिदीक्षित ने कारक प्रकरण के अनन्तर समास–प्रकरण का निवेश किया है। समास का शाब्दिक अर्थ है एक साथ रहना। इस कथाग्रंथ में कथा के लेखक ने कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग इस प्रसंग में किये हैं। यद्यपि ये दोनों प्रकरण (समास–स्त्री प्रत्यय) का प्रयोग संस्कृत में प्राप्त होता है। जिनका विवेचन किया जाता है। अधिकौशाम्बि सुसज्जन दुर्दुर्जन निर्विहन साक्षर सासाङ्ग

यहाँ समास का विवरण दिया जा रहा है महर्षि पाणिनि का सूत्र है अव्ययीभाव (पा०सू० 2.1.5) सूत्र का अर्थ है जो शब्द समास होने के पूर्व तो अव्यय न हो किन्तु समास होने पर अव्यय हो जाय–वही अव्ययी भाव समास है। यहाँ अधिकौशाम्बि में कौशाम्बि अव्यय नहीं है, किन्तु अव्यय के साथ समाज में पड़ जाने

के कारण अधि शब्द की तरह समष्टि में वह भी अव्यय हो जाता है। अव्ययीभाषा में अव्यय के समान कोई विभक्ति नहीं लगती। इस समास में पूर्वपद प्रधान होता है। पूर्वपदप्रधानोऽव्ययीभावः सुसज्जन–सज्जनानां समृद्धिः। दुर्जनानां व्यृद्धि दुर्दुर्जन। (दुर्जनों की दुर्गति) दुर्जन+आम्, दूर+सु। इसी प्रकार अभाव अर्थ में निर्+निर्विध्नम् (विध्नों का अभाव विध्नानां अभावः। अलौकिक स्वपद विग्रह का अभाव विध्नानां अभावः। अलौकिक स्वपद विग्रह विध्ना+आम्, निर्+सु। सादृश्य अर्थ में अलौकिक स्वपद विग्रह अक्षर+ङस्, सह+सु प्रक्रिया समासिदिपूर्वत सह अक्षर इस स्थिति में सह = स आदेश अग्रिम सूत्र से होत है। साक्षर+सु (विभक्ति लोप्) साक्षर। अंगं+ङस्, सह+सु प्रक्रिया। सह–साङ्ग–ससाङ्गं।

यावच्छक्योपायं– यह प्रयोग अव्ययी भाव समास का है। जिसके लिए पाणिनि सूत्र है यावदवधारणे (पा०सू० 2.1.8) सूत्र का अर्थ है अवधारण अर्थ में यावत् शब्द का समास होता है। इस स्थिति में यावत्+जस्, शक्य प्रक्रिया प्रकृति सूत्र से यावत् का शक्य के साथ समास। यावत्+शक्या। श्चुत्व एवं छत्व होने पर यावच्छक्य की सिद्धि होती है।

यथासम्भवम्– सम्भवस् अनतिक्रम्य इस विग्रह से सम्भवम् यथा इति अलौकिक विग्रहे सम्भवम् शब्द से अतिक्रमण अर्थ में यथा शब्द का अव्ययीभाव समास में सुपोधातुप्रातिपदिकयोः इत्यनेन सुपालुकि सम्भवम् तथा इति जाते प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् तदन्तर उपसर्जन पूर्वक होकर इसके बाद अव्ययादारसुपः सूत्र से सुलोप होकर यथा संभव की सिद्धि होती है।

पुण्य त्रातं– यह प्रयोग तत्पुरूष समास का है। पाणिनि सूत्र है कर्तृकरणे कृता बहुलम् (पा०सू० 2.1.32) सूत्र का अर्थ है कर्त्ता का अर्थ होता है पुण्य से रक्षित।

इसी प्रकार पद है मुहूर्तसुखम् यहाँ द्वितीया तत्पुरूष समास का विधान है। पाणिनि सूत्र है अत्यंत संयोगे च (पा०सू० 2.1.29) सूत्र का अर्थ है काल वाचक37 शब्दों का ही (अत्यंत संयोग में समास होता है) इस सूत्र की उपयोगिता 'क्त' प्रत्ययान्त शब्दों के साथ कालवाची शब्दों का समास विधान करने में है। विग्रह वाक्य मुहूर्त पद में द्वितीया विभक्ति हुई है। यहाँ अत्यंत संयोग का अर्थ है लगातार संयोग कर रहना। मुहूर्तसुखम् मुहूर्तसुख+अम् झ मुहूर्तसुखम्।

गमेलिमम्– इस पद में गम् धातु से कर्म अर्थ में केलिमर उपसंख्यानम् इस वार्तिक से केलिमर प्रत्यय होता है। क् और र् की इत्संज्ञा तथा लोक होने पर गमेलिम शब्द की प्रातिपादिक संज्ञा होती है तथा नपुंसक में अम् आदेश होता है इस स्थिति में अमिपूर्वः 194 से पूर्वरूप होकर गलेलिमम् पद सिद्ध होता है।

मांगलिकं– यहाँ पाणिनी सूत्र प्रयोजनम् (पा०सू० 5.109) में ठञ् प्रत्यय लगा है। ठञ् (ठ = इक) तदन्तर मांणलिंक सिद्ध होता है।

अतः प्रथम कल्लोल से एकादश कल्लोल तक व्याकरण के सम्राट महर्षि पाणिनि के सूत्रों द्वारा यह पंरामशरण शास्त्री .त कौमुदी कथाकल्लोलिनी सुसंगठित सुव्यवस्थित व सुप्रतिष्ठित है।

संदर्भ–सूची

1. वृद्धिरेचि (पा०सू० 6.1.88) कौमुदी कथाकल्लोलिनी पृ० ।
2. इकोयणचि (पा०सू० 6.1.77) कौमुदी कथाकल्लोलिनी, पृ० 1
3. कौमुदी कथाकल्लोलिनी, पृ० 2
4. कौमुदी कथाकल्लोलिनी, पृ० 2
5. शरछोऽटि (पा०सू० 8.4.63)
6. अकः सवर्णे दीर्घः (पा०सू० 6.1.101) कौमुदी कथाकल्लोलिनी, पृ० 8
7. एङ पदान्तादति (पा०सू० 6.1.109) कौमुदी कथाकल्लोलिनी, पृ० 8
8. इन्द्रेय (पा०सू० 6.1.124) कौमुदी कथाकल्लोलिनी, पृ० 8
9. ओमाङोश्य (पा०सू० 6.1.95) कौमुदी कथाकल्लोलिनी, पृ० 8
10. शरछोऽटि (पा०सू० 8.4.63) कौमुदी कथाकल्लोलिनी, पृ० 15
11. सिद्धांतकौमुदी सूत्र सं० (1087) के अन्तर्गत वार्तिक
12. कौमुदी कथा कललोलिनी, पृ० 22
13. सिद्धांत कौमुदी सूत्र सं० (1442–1443) के अन्तर्गत वार्तिक।

****